शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 10
Issue 2
15 July, 2019

हिन्दी फिल्मों में प्रेमालाप के पुस्तकालयीन दृश्यों का अनुशीलन

बीज शब्द :

हिन्दी फिल्म, पुस्तकालय और सिनेमा, प्रेम का दृश्यांकन,

हिन्दी फिल्मों का इतिहास 100 वर्षों से भी पुराना हो चला है। यदि बोलती फिल्मों की बात ही की जाये तो भी 1931 में पहली फिल्म आयी थी। तब से अब तक हिन्दी फिल्में लगातार समाज के हर वर्ग का मनोरंजन कर रही हैं। पर ये फिल्में न केवल मनोरंजन का साधन हैं वरन ये समाज पर अपना प्रभाव भी डाल रही हैं। आजादी से पहले कुछ फिल्में आजादी को ही ध्यान में रखकर बनायी गयीं, फिर आजादी के बाद शम्मी कपूर आदि को लेकर मनोरंजनात्मक फिल्में ही बनीं। हांलाकि मनोज कुमार, जिन्हें भारत कुमार भी कहा जाता है, ने देश-प्रेम से ओत-प्रोत फिल्में, जैसे- पूरब-पश्चिम, उपकार बनाईं। फिर दौर आया कलात्मक फिल्मों का, जब स्मिता पाटिल, शाबाना आज़मी, ओमपुरी व नसीरूद्दीन शाह जैसे कलाकारों को लेकर मिर्च-मसाला, अर्धसत्य जैसी फिल्मों का निर्माण हुआ। इन सभी तरह की फिल्मों ने समाज पर अपनी छाप छोड़ी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज पर समय-समय पर हर तरह की हिन्दी फिल्मों का प्रभाव देखा गया हैं। हिन्दी फिल्मों में फैशन पर, नारी केंद्रित भूमिकाओं पर काफी कुछ लिखा जा चुका है, परन्तु इन फिल्मों में पुस्तकालयों का प्रस्तुतीकरण अधिकतर प्रेमालाप के लिए ही किया गया है। हांलाकि कुछ फिल्मों में इन्हें प्रेमालाप से इतर अन्य भी किया गया है। इस लेख में हिन्दी फिल्मों में पुस्तकालयों का प्रस्तुतीकरण किस प्रकार किया है, इसका विश्लेषण किया गया है।

*****

डॉ० अनिल कुमार धीमान
सूचना वैज्ञानिक
गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार - 249404 (उत्तराखंड)

हिन्दी फिल्मों में प्रेमालाप के पुस्तकालयीन दृश्यों का अनुशीलन

विश्व की सबसे पहली फिल्म 'राउंड द गार्डन' थी जो कि लुइस ले0 प्रिंस ने 1888 में बनाई थी। यह मात्र 2.11 सेंकेड की लम्बी फिल्म थी और इसमें चार लोगों को बगीचे में टहलता दिखाया गया था। लेकिन भारत में मूक फिल्मों की शुरूआत 1896 में शुरू हो पाई जब लुमियर ब्रदर्स के कैमरामैन मौरिस सेल्टर ने दिनांक 7 जुलाई 1896 को वैटसन होटल, मुम्बई में इसका पहला शो आयोजित किया था। हालांकि भारत की अपनी पहली फिल्म दादा साहब फाल्के द्वारा वर्ष 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' नाम से बनायी गयी। इसके बाद फाल्के साहब ने 'लाईफ ऑफ क्राईस्ट' व 'लाईफ ऑफ कृष्णा' बनायी। 'राजा हरिश्चंद्र' को उन्होनें फिर एक बार वर्ष 1917 में भी बनाया। फिल्मों में आवाज 1920 में आयी और शीघ्र ही यह आवाज भारत तक पहुँच गयी। पहली ऑल टॉकिंग पिक्चर जो मुंबई में दिखायी गयी वह थी कार्ल लाइमेल्स की 'मेलॉडी ऑफ लव'। लेकिन भारत की पहली बोलती फिल्म इंपीरियल फिल्म कंपनी की 'आलमआरा' थी जो 1931 में प्रदर्शित की गयी।

आलमआरा के बाद जब बोलती फिल्मों ने अपनी पहचान बनानी शुरू की तो बंगला, मराठी आदि की भाषाओं में भी फिल्में बनी जिन्होनें हिंदी फिल्म व्यवसाय को सम्पन्न किया। इस तरह शुरू से ही हिंदी फिल्में हिंदी भाषा की ही फिल्में नहीं थी बल्कि उन्हें हिंदुस्तानी फिल्में भी कहा जा सकता है। हांलाकि बाद में फिल्म इतिहास में उर्दू का जमकर इस्तेमाल करने वाली फिल्मों को भी हिंदी फिल्में ही कहा गया। इस तरह भारतीय हिन्दी फिल्मों का इतिहास सौ वर्षों से भी अधिक पुराना हो चला है।

हिन्दी फिल्मों में ज्वंलत विषयों का प्रस्तुतीकरण

हिन्दी फिल्म उद्योग को भारत का ही सबसे बड़ा फिल्म उद्योग नहीं माना जाता है बल्कि यह विश्व का भी एक महत्त्वपूर्ण फिल्म उद्योग है। फिल्में कभी समाज और सामाजिकता से कहीं अधिक आगे की सोच रखती है या फिर कभी कभार अपनी भंगिमाओं से समाज से कई गुना पीछे भी रहती हैं। लेकिन इन फिल्मों का समाज पर जो प्रभाव होता है, वह प्रत्यक्ष, महत्त्वपूर्ण और प्रभावी होता है। यूं तो कहा जाता है- साहित्य समाज को बदलता है या उसमें समाज को बदलने की शक्ति होती है लेकिन फिल्मों में यह शक्ति कई गुना अधिक होती है क्योंकि आम जनता व अधिक लोगों तक कम समय में पहुँचने के माध्यम के रूप में फिल्मों को जाना जाता है।

यह बात सर्वविदित है कि भारतीय सिनेमा में फिल्म की सफलता के लिए गाना, नृत्य, मारधाड़ व रोना धोना, लंबे-चौड़े संवाद आदि चीजों की आवश्यकता होती है। परन्तु हिंदी सिनेमा का मुख्य केंद्र था सामाजिक उन्नति के लिए हर व्यक्ति को प्रेरित करना और उपलब्ध मौकों का बेहतरीन उपयोग करने हेतु उन्हें प्रोत्साहित करना। सिनेमा की इसी बात की वजह से सिनेमा को एक ओर उपन्यास और आधुनिक रंगमंच से अलग देखा गया तो दूसरी ओर उसे पुराण महाकाव्यों आदि पारपंरिक अभिव्यक्ति कलाओं से भी अलग रखा गया।

फिल्म और समाज के सच का एक जबर्दस्त सच यह भी है कि दोनों एक दूसरे के सच से प्रभावित तो है लेकिन उसमें डिग्री का अंतर है। समाज के सच का इस्तेमाल फिल्में अपने आर्थिक हितों के लिए रहस्यमय रूप या भयावह रूप में भी करती है। दर्शकों द्वारा स्वीकृति की हद तक ही फिल्मों का सामाजिक यथार्थ से सरोकार होता है। उसके आगे फिल्मों पर विचार और भावना का साम्राज्य होता है, उन्हें मूल्यों की परवाह कम-ज्यादा होती है। आगे फिल्मकार भी जो चाहता है वही करता है।

शुरू में फिल्में मनोरंजन के लिये बनी जिसमें धार्मिक फिल्मों की तादाद अधिक थी परन्तु ऐसा नहीं है, उस समय फिल्में केवल मनोरंजन के लिये ही बनी हो वरन् सामाजिक समस्याओं पर, आजादी के लिये संदेश देती फिल्मों का भी निमार्ण हुआ। यहाँ 1936 में फ्रांज ऑस्टिन के निर्देशन में बनी 'अछूत कन्या' व वी0 शांताराम की 1941 में बनी 'पड़ोसी' फिल्मों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। 'अछूत कन्या' बांबे टॉकीज की फिल्म थी जिसमें ऊँची जाति के युवक व नीची जाति की युवती के प्यार को दर्शाया गया था। अपने प्रारम्भिक दौर में ऐसे ज्वलंत विषय पर बनी इस फिल्म को महात्मा गाँधी द्वारा भी सराहा गया था। जबकि 'पड़ोसी' फिल्म को एक गाँव में रहने वाले हिन्दू-मुस्लिम एकता विषय पर बनाया गया था, जो

उस समय के लिये एक बड़ा संदेश था। इसमें गजानन्द जागीरदार ने 'मिर्जा' व मजहर खान ने 'ठाकुर' का चरित्र निभाया था। 1943 में ज्ञान मुखर्जी के निर्देशन में बनी व अशोक कुमार व मुमताज शांति अभिनीत फिल्म 'किस्मत' में कवि प्रदीप का एक गाना 'दूर हटो ए दुनिया वालों हिन्दुस्तान हमारा है' उस समय आजादी के लिये लिखा गया था और यह काफी प्रसिद्ध भी हुआ था। आजादी के बाद भी यह सिलसिला जारी रहा पर इस दौर में मनोरंजन पर अधिक ध्यान रखा गया। हांलाकि 1957 में बी0 आर0 चौपड़ा निर्देशित 'नया दौर' में मशीनी युग में श्रमिकों व मालिकों के संघर्ष की गाथा को और 1959 में मिल-मजदूरों व मालिकों के द्वन्द पर एस0 एस0 वासन के निर्देशन में बनी फिल्म 'पैगाम' में तत्कालीन समस्याओं को प्रदर्शित किया गया।

हिन्दी फिल्मों का समाज पर प्रभाव

फिल्मों का समाज पर प्रभाव पड़ता है। पूर्व में भी समाज पर फिल्मों का प्रभाव पड़ता था। फैशन यानी कपड़े पहनने का ढंग, बालों का ढंग, बातचीत का ढंग, सिगरेट आदि पीने का ढंग आदि सीखने की ओर समाज का झुकाव रहता था। हालांकि उसका व्यक्ति की चिंतन शैली या जीवन दृष्टि पर ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता था - थोड़ा प्रभाव प्रेम संबधों या तरीकों पर पड़ता था लेकिन उसने सामाजिक अव्यवस्था का रूप नहीं लिया था। फिल्मों ने जीवन के प्रति जो भी दृष्टिकोण पैदा किया था वह आधुनिक फैशन से लिप्त होने के बावजूद कहीं न कहीं उदार व उदात्त था। नायक अपने गुणों से नायिका के दिल पर राज करता था न कि बाहुबल पर।

आज फिल्मों में हिंसा और सेक्स की प्रधानता ने इस नायक की हत्या कर डॉन-नुमा नायक खड़ा किया है जो अनास्था से भरा हुआ है और उसे अपनी शक्ति पर ही भरोसा है। फिर उसकी आस्था आज के समाज की आस्था बन जाती है। साम, दाम, दंड व भेद से धन और शक्ति को हथियाना ही उसका सामाजिक उद्देश्य होता है। यह मनुष्य की नियति है कि वह गलत बातों का अनुसरण तुरंत कर लेता है और अच्छी बातों का कम व देर से। लेकिन समाज का थोड़ा-बहुत सा सत्य फिल्मों का सम्पूर्ण सत्य बनकर सामने आता है।

हिन्दी फिल्मों में पुस्तकालय का प्रस्तुतीकरण

श्वेत श्याम फिल्मों के जमाने में 1953 में वी0 शान्ताराम के निर्देशन में बनी फिल्म 'तीन बती चार रास्ता' जिसके मुख्य अभिनेता करण दीवान (रमेश) एवं अभिनेत्री संध्या (श्यामा) हैं, में कई बार व्यक्तिगत पुस्तकालय का चित्रण किया गया है। इन दृश्यों में अभिनेता करण दीवान के साथ अभिनेत्री संध्या प्यार भरी चुहलबाजी करती नजर आती है। इसी तरह विमल रक्ष्य के निर्देशन में बनी फिल्म 'सुजाता' जिसके मुख्य अभिनेता सुनील दत्त (अधीर) एवं अभिनेत्री नूतन (सुजाता) व शशिकला (रमा) हैं, के दृश्य में फिल्म का हीरो सुनील दत्त अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय में पढाई करता दिखायी देता है। परन्तु एक बार उसे स्टेट सेंट्रल लाईब्रेरी, मुम्बई के अंदर बैठ कर पढता दिखाया गया है, परन्तु यहां भी उसका एक दोस्त आकर उससे फिल्म की हीरोइन नूतन के बारे में बात करने लगता है।

इसी तरह 1960 में मोहन सहगल के निर्देशन में अभिनेता किशोर कुमार (मदन लाल) एवं अभिनेत्री सईदा खान (इन्दु) को लेकर बनी फिल्म 'अपना हाथ जगन्नाथ' में कॉलेज के पुस्तकालय को दिखाया गया है। परन्तु यहाँ भी प्यार को ही केन्द्रित करते हुये पुस्तकालय को दिखाया गया है। यदि 1960 में टी0 प्रकाश राव के निर्देशन में बनी फिल्म 'कॉलेज-गर्ल' की बात करें जिसके मुख्य अभिनेता शम्मी कपूर एवं वैजयन्ती माला हैं। इसमें भी कालेज पुस्तकालय का चित्रण है, जिसमें शम्मी कपूर वैजयन्ती माला से मिलने सिटी कॉलेज के पुस्तकालय में जाता है, जहां वैजयन्ती माला मानव कंकाल के मॉडल से कुछ नोट कर रही है। वैजयन्ती माला शम्मी कपूर से पढ़ाई की बात करती है, परन्तु शम्मी कपूर उन बातों को प्यार का रूख दे देता है।

अब यदि रंगीन दौर की बात करें तो 1977 में बनी 'आफत' फिल्म का जिक्र आता है जो नवीन निश्चल और लीना चन्द्रावरकर को लेकर बनाई गयी थी। इस फिल्म में भी एक सार्वजनिक पुस्तकालय है जिसका फिल्म में वास्तव में प्रयोग किया गया है, को दर्शाया गया है। पहले दृश्य में दो गुंडे भाग कर स्टेट सेंट्रल लाईब्रेरी, मुम्बई में आते हैं। इनका पीछा करते हुये फिल्म का हीरो नवीन निश्चल व उसका दोस्त महमूद अंदर आ जाते हैं। दूसरे दृश्य में एक पुस्तकालय कर्मी को कार्य करते दिखाया गया है और नवीन निश्चल व महमूद उसके पीछे से जाते दिखायी देते हैं। एक अन्य दृश्य में भी नवीन निश्चल व महमूद

पुस्तकालय के रैक्स आदि के बीच गुंडों को खोजते दिखायी देते हैं।

1978 में सचिन व हीरेन नाग के निर्देशन में बनी 'अंखियों के झरोखों से' में सचिन व रंजीता मुख्य भूमिका में थे। इस फिल्म में राजेन्द्र नाथ ने पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका निभाई थी। यहाँ भी सचिन व रंजीता आपस में मिलने के लिये पुस्तकालय का प्रयोग करते हैं। 1980 में के0 बाजपेई के निर्देशन में राजेश खन्ना, हेमा मालिनी को लेकर बनी 'बंदिश' फिल्म में हेमा मालिनी अपने कॉलेज के पुस्तकालय में जाती है, जहाँ पहले से ही राजेश खन्ना पढ़ाई कर रहा होता है। पुस्तकालय में हेमा मालिनी राजेश खन्ना को देखती है। 1982 में दिलीप धवन के निर्देशन में फारूख शेख और दीप्ति नवल को लेकर आई 'साथ-साथ' फिल्म में भी फिल्म की अभिनेत्री दीप्ती नवल अपने कालेज के पुस्तकालय में प्रवेश करती है जहाँ फारूख शेख पहले से ही बैठा है । पुस्तकालय में दोनों कुछ बातें करते हैं फिर दीप्ती नवल चली जाती है ।

इसी तरह 1990 में राहुल राय व अन्नु अग्रवाल अभिनीत 'आशिकी' में भी पुस्तकालय में जहाँ पढ़ाई के दृश्य है वहीं प्रेमालाप भी है। 1992 में दीपक बलराज के द्वारा निर्देशित और रोनित रॉय व फरहीन अभिनीत 'जान तेरे नाम' फिल्म में भी प्यार के ही दृश्य फिल्माये गये हैं। इसमें तो हीरो रोनित रॉय कालेज के पुस्तकालय में ही गाना गाते हुए व नाचते हुये दिखायी दे रहा है। 1996 में हैरी बावेजा के निर्देशन में बनी व अजय देवगन व सोनाली बेन्द्रे अभिनीत 'दिलवाले' में फिल्म का हीरो अजय देवगन रवीना टंडन से बात करने के लिए कॉलेज के पुस्तकालय में आता है और अपने प्यार का इजहार करता है। अजीत सेजवाल के निर्देशन में बनी 1995 की 'आन्दोलन' फिल्म में तो हद ही हो गयी, यहाँ अभिनेता संजय दत्त अपने दोस्त अशरफ को झूठ बोलकर एक दवाई पिला देता है कि इसे पी कर वह गायब हो जायेगा। यह सोचकर अशरफ कालेज की एक लड़की सलमा जिससे वह प्यार करता है, के सामने पुस्तकालय में जाकर कपड़े उतार ही देता है ।

1995 में गुलशन कुमार के निर्देशन में बनी और कृष्ण कुमार व शिल्पा शिरोडकर अभिनीत फिल्म 'बेवफा सनम' तथा 1996 में हैरी बावेजा निर्देशित 'दिलजले' जिसमें अजय देवगन व सोनाली बेन्द्रे मुख्य भूमिका में हैं, में भी प्यार के इज़हार के लिये ही पुस्तकालय का चित्रण है। 1998 में अनिल कपूर और पूजा भट्ट अभिनीत एक फिल्म आई थी, 'कभी-न-कभी' जिसे प्रियदर्शन ने निर्देशित किया था । इसमें आलोक नाथ ने पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका का निर्वाह किया था। इसके एक दृश्य में अनिल कपूर जो बचपन से ही अपने घर से दूर रहा है, अपने पिता आलोक नाथ से मिलने पुस्तकालय में जाता है, और कविता पर पुस्तक माँगता है। तब अनिल कपूर आलोक नाथ को बताता है कि वह उनका बेटा है, उसके बाद दोनों एक-दूसरे को गले लगाते हैं। यह एक मार्मिक दृश्य कहा जा सकता है।

हिन्दी फिल्मों में पुस्तकालय का सकारात्मक व नकारात्मक प्रस्तुतीकरण

1983 में सावन कुमार टॉक निर्देशित 'सौतन' फिल्म में तो पद्मिनी कोल्हापुरी ने पुस्तकालयाध्यक्षा की भूमिका ही की है। 1986 में आई 'मोहब्बत की कसम' जिसे के0 पप्पू ने निर्देशित किया था और राजेश खन्ना व तनुजा मुख्य हीरो व हीरोईन थे। इसमें पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका पेन्टल ने निभाई थी। पेन्टल कहता है कि वह पहले एक शिक्षक बनना चाहता था लेकिन नहीं बन सका। फिर वह नेता बनना चाहता था लेकिन नहीं बन सका। पर जब वह कुछ भी नहीं बन सका तो पुस्तकालयाध्यक्ष बन गया। इस तरह इस फिल्म में पेन्टल ने पुस्तकालय व्यवसाय की व्यथा बताई है।

वर्ष 2000 में एक फिल्म आई थी, 'क्या कहना' जिसमें सफै अली खान व प्रीति जिन्टा ने मुख्य भूमिका की थी और इसे निर्देशित किया था कुंदन शाह ने। इस फिल्म में प्रीति जिन्टा पुस्तकें हाथ में लेकर इश्यू-रिटर्न काउन्टर पर लगी लाईन में खड़ी होती है। चूँकि प्रीति जिन्टा माँ बनने वाली होती हैं, इसी कारण उससे आगे लाईन में लगे सभी छात्र-छात्रायें उसे आगे कर देते हैं। तब वह अपनी पुस्तकें वापस करने के बाद शैल्फ में पुस्तकें निकालने के लिए चली जाती हैं। यहाँ नारी के प्रति एक सकारात्मक संदेश देने का प्रयास किया गया है।

परन्तु 1992 की अब्बास मस्तान के निर्देशन में बनी 'खिलाड़ी' फिल्म में अक्षय कुमार व आयशा जुल्का ने मुख्य भूमिका निभाई थी। इस फिल्म के एक दृश्य में अक्षय कुमार व उसका दोस्त बोनी कपूर रात को चोरी से पुस्तकालय में घुसकर एक रजिस्टर का एक पेज चुरा लेते हैं, जिसमें नॉवल इश्यु हुआ

था। यहाँ समाज में एक गलत संदेश जाता है। आंदोलन में तो एक लड़का पुस्तकालय में अपने कपड़े ही उतार देता है । यह दृश्य भी समाज में गलत संदेश देता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं समाज के विभिन्न पक्षों का प्रस्तुतीकरण करने के साथ-साथ हिन्दी फिल्मों में पुस्तकालयों का चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। यह बात दीगर है कि ज्यादातर फिल्मों में इसे 'प्रेमालाप' हेतु अधिकतर प्रयुक्त किया है। परन्तु कभी-कभी जैसे- 1983 की 'सौतन' फिल्म, 1986 में आई 'मोहब्बत की कसम' व वर्ष 2000 में आई 'क्या कहना' फिल्मों में पुस्तकालयाध्यक्ष का पक्ष भी रखा गया है। 'मोहब्बत की कसम' में तो पेन्टल ने पुस्तकालय व्यवसाय की व्यथा ही सामने रख दी है। यह सच है उस समय यदि किसी व्यक्ति को किसी अन्य इच्छित कोर्स में प्रवेश नहीं मिल पाता था तब वह पुस्तकालय कोर्स में प्रवेश की सोचता था। परन्तु इस पर बनी 'खिलाड़ी' व 'आंदोलन' जैसी फिल्म से समाज में नकारात्मक संदेश ही जाता है।

कुल मिलाकर हिन्दी फिल्मों में पुस्तकालयों का चित्रण 'प्रेमालाप' हेतु अधिक है, हाँ यदा-कदा कुछ सकारात्मक संदेश भी देने की कोशिश हुयी है। कुछ फिल्में अभी हाल में ऐसी भी आयी हैं, जिसमें पुस्तकालय की महत्ता बताई जा सकती थी। उदाहरणार्थ- 'तारे जमीं पर', मन्द बुद्धि छात्रों के लिये बनी एक अच्छी फिल्म थी, इसमें पुस्तकालय की महत्ता दिखायी जा सकती थी। ऐसे विषयों पर आवश्यकता है कि फिल्म निर्माता व निर्देशक पुस्तकालय के दृश्यों को अपनी फिल्मों में शामिल करें और सकारात्मक रूप में उन्हें चित्रित करें। साथ ही प्रेमालाप से हटकर भी पुस्तकालयों का चित्रण आवश्यक है, इसका समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धीमान, अनिल कुमार एवं कौशिक, सचिन (2019) हिन्दी फिल्मों के आरम्भिक दौर में पुस्तकालयों का चित्रण। अंजता, 8 (1) भाग 2: 155-167।

2. धीमान, अनिल कुमार एवं कौशिक, सचिन (2019) 1980-2000 के मध्य प्रदर्शित हिन्दी फिल्मों में ग्रंथालयों व ग्रंथालयाध्यक्षों का चित्रण। ग्रंथालय विज्ञान, 50 (1-2) : 221-227।

3. Dhiman, A. K. and Kaushik, S. K. (2019). Glimpses of Librarians in Hindi Cinema: A Study of Hindi Films Released in 21st Century- In Salek Chand, Rama Nand Malviya, Shishir H Mandalia and Nimesh D. Oza (Eds.): Building Smart Libraries: Challenges and Discovery Tools - Proceedings of International Conference on Knowledge Organisation in Academic Libraries & 2019. Parshva Publication, Ahmedabad- Pp. 99-114.

4. शंदे, विजय (2016) भारतीय सिनेमा के इतिहास का विंहगावलोकन। साउथ एशियन एकेडमिक रिसर्च क्रोनिकल, 3 (2) : 28-56।''

◆◆◆

प्रकाशन शोध प्रक्रिया का अंतिम और अत्यंत महत्त्वपूर्ण चरण होता है। शोध समाज की मूल्यवान उपलब्धि है। इसे समाज के बीच आना ही चाहिए जिससे समस्त मानवता लाभ उठा सके। प्रकाशन के सीमित अवसर शोध को संकुचित करते हैं।